RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 50, अंक : 13 एक प्रति : 2 रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 25 जून, 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 13, 22-25 जून 2023 तदनुसार 11 आषाढ़, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

जो जागता है वेद मन्त्र उसे चाहते हैं!

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

यो जागार तमृचः कामयन्ते
यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह
तवाह, मस्मि सख्ये न्योका।।

शब्दार्थ-यः = जो, **जागार** = जागता है, **तम् ऋचः** = उसे वेद मन्त्र, **कामयन्ते** = चाहते हैं, **यः** = जो, **जागार** = जागता है, **तम् उ** = उसे ही, **सामानि** = स्तुतियाँ, **यन्ति** = प्राप्त होती हैं, **यः** = जो, **जागार** = जागता है, **तम् अयम्** = उसे यह, **सोम** = भोग्य संसार, **आह** = कहता है, **तव अहम् अस्मि** = मैं तेरा हूँ, **सख्ये न्योका** = तेरी मित्रता में मेरा निवास है।

भावार्थ–जगत् प्रसिद्ध कहावत है कि जो जागत है सो पावत है। जो सोवत है सो खोवत है। यही बात इस मन्त्र में कही गयी है कि जो मनुष्य अपनी चेतना को जान लेता है, अपने गुणों को समझ लेता है और अपनी शक्तियों को पहचान लेता है उसके लिए सारा संसार व संसार के भोग्य पदार्थ हाथ जोड़कर सामने उपस्थित हो जाते हैं, उसके अपने हो जाते हैं। उन सबको वह भोग लेता है। इसके विपरीत जो अज्ञानी मनुष्य अपने आपको हाथ, पाँव, आँख, नाक, पेट, सिर का पिण्ड मात्र मानता है वह अपने चेतन स्वरूप कर्त्तव्य रूप से अनभिज्ञ होता है। वह ऐश्वर्य युक्त प्राकृतिक भोगों को भोगने की बात दूर रही अपना पेट भी पूरी तरह से भर नहीं सकता है। इसी बात को इस रूप में कहा गया है कि ''सकल पदारथ है जग माँही। कर्म हीन फल पावत नाँही।'' दूसरे रूप में भी एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है ''पुरुषार्थ ही इस दुनिया में सब कामना पूरी करता है। मन चाहा फल उसने पाया जो आलसी बन के पड़ा न रहा।'' योगदर्शन में महर्षि ने कहा ''न अतपस्विनो योग सिध्यति'' अर्थात् जो सजग रहते हुए पुरुषार्थ नहीं करते हैं, उनको योग की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।

विश्व में जितने भी धनवान, बलवान, विद्वान्, प्रवक्ता, शिल्पी, नेता, वैज्ञानिक, ऋषि, मुनि आदि प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं उनके जीवन को खोलकर पढ़ते हैं तो प्रायः मिलेगा कि उन्होंने चेतनत्व को जानकर अपने सामर्थ्य को समझकर अपनी शक्तियों को पहचानकर, सतर्कता, सावधानी से बिना किसी क्षण को नष्ट किये सतत पुरुषार्थ करके आगे बढ़ते गये, ऊपर उठते गये, गतिशील होते गये और प्रगति की चरम सीमा पार करके महामानव, अतिमानव पद को प्राप्त कर गये। इसके विपरीत उसी रंग, रूप, आकार, भार वाले व्यक्ति अपने स्वरूप को न जानकर पशुवत् जीवन को व्यतीत करके जीवन लीला समाप्त कर जाते हैं।

वेद मंत्र में कहा गया है कि वेद की ऋचा में उपनिषद् के वाक्य, गीता, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के श्लोक, पंक्तियाँ, सूत्र, शब्द, वाक्य, मनुष्य मात्र के लिए हैं किन्तु सामान्य व्यक्ति मात्र उन्हें देखते हैं, पढ़ते हैं, या सुन लेते हैं, कुछ समझ भी लेते हैं, किन्तु उस वेदादि मन्त्रों में वर्णित ज्ञान विधि को आत्मसात् करके परम पुरुषार्थ और घोर तपस्या के साथ क्रियान्वित करने वाले ही संसार के भोग्य पदार्थों को उपलब्ध कर पाते हैं, अन्य नहीं। सांसारिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने-कराने की बात तो दूर रही असावधान, आलसी, प्रमादी, दीर्घ सूत्र व्यक्तियों की तो अकाल में ही जीवनलीला समाप्त हो जाती है।

नीतिकारों ने कहा है ''**उद्यमेन ही सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः, न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः**'' अर्थात् मात्र इच्छा करने से व्यक्तियों की कार्य-सिद्धि नहीं होती है, उसके लिए घोर पुरुषार्थ करना पड़ता है। जैसे कि सिंह कितना ही बलवान क्यों न हो हिरण आदि पशु उस सोते हुए के पास स्वयं चलकर नहीं आते हैं। उसे दौड़ना पड़ता है। जिन सुख साधनों के लिए भोग, ऐश्वर्य के लिए सांसारिक मनुष्य चाहना करते हैं किन्तु नहीं मिलता है वही ऐश्वर्य जागे हुए निरालासी, पुरुषार्थी, त्यागी, तपस्वी, व्रती मनुष्यों के सामने अनायास ही उपस्थित हो जाता है। अतः वेद मन्त्र में कहा गया है कि हे मनुष्यो! जागो आलस्य, प्रमाद, तमोगुण, अकर्मण्यता को त्यागो और संसार के उच्चतम भोग-ऐश्वर्यों को प्राप्त करो और कराओ। यश और कीर्ति को प्राप्त करो। जो हमारे जैसे अन्य मनुष्यों ने प्राप्त किया है वह सब को मिल सकता है शर्त है केवल जागरुकता की।

आओ प्रभु भक्तों! न केवल सांसारिक सुख वैभव को प्राप्त करे अपितु उस परमपिता परमात्मा के अद्वितीय, अलौकिक, नित्यानन्द रूपी ऐश्वर्य को भी प्राप्त करें। दुर्भाग्य, प्रतिकूलताएँ, परिस्थितियों का राग छोड़कर परम पुरुषार्थ के साथ जुट जाएँ। अवश्य ही परम ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेंगे। जिसे अब तक लाखों-करोड़ों ऋषिमुनि प्राप्त कर चुके हैं। अब देर न करें, जो चला गया है सो चला गया, शेष बचे काल को सुनियोजित रूप में विनियोजित करें। अब भी यदि अवसर चूक गये तो सिवाय पश्चात्ताप, ग्लानि, दुःख के कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

उपनिषदों में शिक्षा का परम उद्देश्य

ले.-शिवनारायण उपाध्याय कोटा

सांख्य दर्शन कहता है कि 'अथ त्रिविध दु:खात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरूषार्थ:।।

सा. द. 1.1

अर्थ-अब तीन प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति परमपुरुषार्थ पुरुष का परम लक्ष्य, परम पुरुषत्व, मानव एवं मानव जीवन की परम सफलता, मानव निरूपता कैवल्यानुभूति जो है वह प्रस्तुत की जाती है।

इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च ज्ञान जिसे ब्रह्मविद्या कहा जाता है, इसका जानना और तदनुरूप जीवन यात्रा का चलाना आवश्यक होता है। ज्ञान प्राप्त कर लेना ही सब कुछ नहीं होता है। प्राप्त ज्ञान को जीवन में ढालना आवश्यक होता है। कहा भी गया है-आचारवान् पुरूषो वेद:। आचारवान् पुरूष को ही विद्वान् माना जाता है।

सभी उपनिषदों का मुख्य लक्ष्य ब्रह्म विद्या का वर्णन करना ही रहा है। ईशो उपनिषद् जो यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ही है उसका प्रारम्भ ही विद्या परक मंत्र से होता है।

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृध: कस्यस्विद्धनम्।।ईश. उप. 1

(इदम् सर्वम्) यह सब (यत्किञ्च) जो कुछ (जगत्याम्) पृथ्वी पर (जगत्) चराचर वस्तु है (ईशा) ईश्वर से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् आच्छादित है। (तेन) उसी ईश्वर के (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थों से (भुञ्जीथा:) भोग कर। (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन का (मा गृध:) लालच मत कर। आगे कहा गया है कि सदैव आत्मानुकूल कार्य ही करो।

असुर्य्यानाम से लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता:।

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:।।ईश. अ. 3

अर्थ-(ये.के.च) जो कोई (आत्म हन:) आत्मा के घातक (जना:) मनुष्य हैं (ते) वे (प्रेत्य) मत कर (अन्धेन तमसा) गहरे अन्धेरे से (आ वृता:) आच्छादित हुए (ते असुर्या: लोक नाम) वे प्रकाश रहित नाम वाले जो लोक-योनियां है (तान्) उन योनियों को (अभि गच्छान्ति) प्राप्त होते हैं।

आगे आठवें मंत्र में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कर देते हैं।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम-व्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कवि मनीषी परिभू: स्वयम्भूर्याथातथ्यतेऽर्थान् व्यद-धाच्छाश्वतीभ्य: समाभ्य।।

ईश. उप. 8.

अर्थ-(स:) वह ईश्वर (परि अगात्) सर्वत्र व्यापक है। (शुक्रम्) जगदुत्पादक (अकायम्) शरीर रहित (अव्रणम्) शारीरिक विकार रहित (अस्नाविरम्) नाड़ी और नस के बंधन से रहित (शुद्धम्) पवित्र (अपापविद्धम्) पाप से रहित (कवि:) सूक्ष्म दर्शी (मनीषी) ज्ञानी (परिभू:) सर्वोपरि वर्त्तमान (स्वयम्नू:) स्वयं सिद्ध (शाश्वतीभ्य:) अनादि (समाभ्य:) प्रजा (जीव) के लिए (याथतथ्यत:) ठीक-ठीक (अर्थान्) कर्म फल का (व्यदधात्) विधान करता है।

केनोपनिषद् भी ब्रह्म विद्या पर ही वर्णन करते हुए कहती है-

यद्वाताऽनभ्युदितं, येन वागभ्युद्यते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेवं यदिदमुपासते।।केन. उप. 1.4

जो वाणी द्वारा प्रकाशित नहीं होता वरन् जिससे वाणी का प्रकाश होता है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिसका वाणी से सेवन किया जाता है वह ब्रह्म नहीं है।

केनोपनिषद् का कहना है कि ब्रह्म को इसी जन्म में जान तो।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति चेदिहावेदीन्महती विनष्टि:।

भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवन्ति।के. नोपनिषद 1.5

अर्थ-यहीं यदि उस ब्रह्म को जान लिया तो ठीक है परन्तु यदि यहां न जाना तो सर्वनाश हुआ है। धीर पुरुष प्रत्येक भूत में उसकी खोज (तत्वज्ञान) प्राप्त करके इस लोक से पृथक् होकर अमर हो जाते हैं। कठोपनिषद् श्रेय और प्रेय मार्ग बताने के बाद आत्मा और ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करता हैं ब्रह्म के स्वरूप पर कठोपनिषद् कहता है-

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु: प्रसादान्महिमानमात्मन:।। कठ. 2.20

अर्थ-(आत्मा) ब्रह्म (अणो:) सूक्ष्म (जीवों) से भी (अणीयान्) अत्यन्त सूक्ष्म है (महत:) बड़े (आकाशादि) से भी (महीयान्) बड़ा है वह (अस्य) इस (जन्तो:) प्राणी के (गुहायाम्) हृदयाकाश में (निहित:) स्थित है। (तम्) उस (आत्मन:) आत्मा की (महिमानम्) महिमा को (धातु: प्रसादात्) बुद्धि के निर्मल होने से (अक्रतु:) निष्काम (वीतशोक:) शोक रहित व्यक्ति (पश्यति) देखता है।

अशरीरꣳशरीरष्वनवस्थेष्व-वस्थितम्।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।कठ. उप. 2.21

अर्थ-(शरीरेषु) साकार पदार्थों में (अशरीरम्) निराकार (अनवस्थेषु) चलायमान पदार्थों में (अवस्थितम्) अचल (महान्तम्) अनन्त (विभुम्) व्यापक (आत्मानम्) परमात्मा को (मत्वा) जान कर (धीर:) धीर पुरूष (नशोचति) शोक नहीं करता है।

फिर शरीर के अन्दर रहने वाले आत्मा के विषय में कहा गया है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।

बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च।।कठ. उप. 3.3

अर्थ-(आत्मानम्) आत्मा को (रथिनम्) रथी (सवार) (विद्धि) जान। (तु) और (शरीरम् एव) शरीर को ही (रथम्) रथ (जान) (च) और (मन: एव) मन को ही (पग्रहम् लगाम जान।)

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषिण:।।कठ. 3.4

अर्थ-(इन्द्रिययाणि) इन्द्रियों को (हयान्) घोड़े (आहु:) कहते हैं। (तेषु) उन इन्द्रियों में (विषयान्) शब्द, स्पर्श आदि विषयों को (गोचरान्) मार्ग कहते हैं। (मनीषिण:) विचारशील पुरुष (आत्मा, इन्द्रिय, मनोयुक्तम्) इन्द्रियों और मन से युक्त आत्मा (भोक्ता) भोगने वाला (इति आहु:) ऐसा कहते हैं। ब्रह्म और जीवात्मा दोनों हृदय में ही निवास करते हैं।

अंगुष्ठमात्र: पुरूषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।

ईशानोभूत भव्यस्य न ततो विजुगुप्सते।। एतद्वैतत्।। कठ. 4.12

अर्थ-(भूत भव्यस्य) हुए और होने वाले (जगत्) का (ईशान:) अध्यक्ष (पुरूष:) पूर्ण परमात्मा (अंगुष्ठमात्र:) अंगूठे के बराबर हृदयाकाश में रहने वाले (आत्मनि) जीवात्मा के (मध्ये) मध्य में (तिष्ठति) रहता है (तत:) उसके ज्ञान से (न विजुगुप्सते) कोई ग्लानि को नहीं पाता (एतद् वैतत्) यही वह ब्रह्म है।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेत-नानामे को बहूनां यो विदधति कामान्।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्ति: शाश्वती नेतरेशाम्।।कठ. 5.13

अर्थ-(नित्यानाम्) नित्य पदार्थों में (नित्य:) नित्य (चेतनानाम्) चेतन पदार्थों में (चेतन:) चेतन (बहूनाम्) बहुतों में (एक:) एक है। (य:) जो (जीवों के प्रति) (कामान्) कर्म फलों को (विदधाति) देता है। (तम्) उस (आत्मस्थम्) जीवात्मा में स्थित (परमात्मा) को (ये) जो (धीरा:) ध्यानशील (अनुपश्यन्ति) देखते हैं (जान जाते हैं) (तेषाम्) उनको (शाश्वती) चिरस्थायिनी (शान्ति:) शान्ति प्राप्त होती है (इतरेषाम् न) अन्यों को नहीं।

प्रश्नोपनिषद् के छ: प्रश्न भी ब्रह्म विद्या से ही सम्बन्धित हैं।

फिर मुण्डकोपनिषद् तो विद्या के दो भाग कर देता है अपरा और परा।

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्य इतिह स्मयद् ब्रह्मविदो।

वदन्ति परा चैवापराच।। मुण्डक उप. 1.14

अर्थ-(तस्मै) उस (शौनक) के लिए (स:) वह अंगिरा ऋषि (ह) स्पष्ट (उवाच) बोला कि (द्वे विद्ये) दो विद्याएं (वेदितव्ये इति) जानने योग्य हैं। (हस्म) निश्चय (यद्) जो (ब्रह्मविद:) ब्रह्म के जानने वाले (वदन्ति) कहते हैं (परा, च अपरा) परा और अपरा।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

राष्ट्र विचारधारा के पोषक महर्षि दयानन्द सरस्वती

देश में आज हर व्यक्ति राष्ट्र भक्ति पर अपने विचार खुले मन से रख रहा है और रखने भी चाहिए। लेकिन पर थोड़ा विचार कीजिए कि परतंत्र भारत में इसका सूत्रधार कौन थे। उन्नीसवीं सदी के इतिहास में आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को एक समाज सुधारक के रूप में जाना जाता है। मगर उन्होंने भारतीय लोगों में राष्ट्रीय विचारधारा का जो शंख फूंका था उसका इतिहास में कहीं वर्णन नहीं मिलता। उनके समाज सुधार के कार्य भी उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत थे। भारतीयों में राष्ट्रीय विचारधारा जगाने का श्रेय निस्संदेह उन्हीं को जाता है। उन्होंने भारतीयों में स्वदेशी तथा स्वदेशाभिमान की भावनाओं को पुनः जागृत किया। वास्तव में वह एक समाज सुधारक होने से पूर्व राष्ट्र के सच्चे उद्धारक थे। महर्षि ने समाज में जहां भी कोई कुरीति देखी उस कुरीति के खिलाफ ड़टकर आवाज उठाई। महर्षि दयानन्द ने धार्मिक कुरीतियों और रूढ़ियों से छुटकारा पाने हेतु एक ईश्वर की पूजा के प्रसार और प्रचार के लिए वैदिक धर्म के पुनरूद्धार के लिए, विदेशी सत्ता की दासता रूपी जंजीरों से मुक्ति पाने के लिए, स्वराज्य प्राप्ति की भावना को जाग्रत करने के लिए और सभी प्रकार की सामाजिक कुरीतियों जात-पात के और ऊंचनीच के भेदभाव को तिलांजलि देने के लिए, स्त्री जाति, गौवंश और अनाथों की रक्षा के लिए, हिन्दू जाति की रक्षा के लिए तथा अनेक समाज उत्थान के कार्यों के लिए आर्य समाज की स्थापना की और महर्षि ने अपने अल्प जीवनकाल में उस संस्था के माध्यम से समाज सुधार के कार्यों में एक अद्‌भुत क्रान्ति पैदा करके राष्ट्र के जीवन में एक नई चेतना पैदा की।

महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय विचारधारा का उत्कट प्रमाण है उनकी जन्मभूमि के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा। जन्मभूमि को स्वतन्त्र देखने का स्वप्न सबसे पहले उन्होंने ही संजोया था। वे कहते थे कि कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। स्वाधीनता शब्द का सर्वप्रथम उपयोग उन्होंने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया है। सत्यार्थ प्रकाश उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से परिपूर्ण है। इसमें उन्होंने सत्य के अर्थों पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रवाद की भावना का भी चित्रण किया है। उन्होंने एक राजा की परिभाषा देते हुए कहा है कि राजा उसी को कहते हैं जो पवित्र गुण, कर्म स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपात रहित, न्याय धर्म की सेवा, प्रजा में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मानकर उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने का सदा यत्न करे। ठीक इसी प्रकार उन्होंने प्रजा की परिभाषा देते हुए कहा कि प्रजा उसको कहते हैं जो पवित्र, गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित न्याय धर्म के सेवन से राजा की उन्नति चाहती हुई राजद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते। जन्मभूमि के प्रति उनका अगाध प्रेम छठे समुल्लास में कई स्थानों पर प्रकट होता है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए वेदज्ञ, शास्त्र, शूरवीर, लक्ष्यवान, कुलीन तथा धर्मचतुर को ही मन्त्री बनाया जावे। राष्ट्रीय विचारधारा जागृत करने के लिए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि हम और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना है, अब पालन होता है तथा आगे भी होता रहेगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब मिलकर करें।

महर्षि दयानन्द गुजरात में जन्मे थे, मथुरा में गुरू विरजानन्द से शिक्षा प्राप्त की तथा राष्ट्रीय जनता में राष्ट्रीयता जगाने के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी का सहारा लिया। यह उनकी स्वदेशीयत का ही प्रमाण था। उनका रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, वेषभूषा आदि पूर्णरूपेण स्वदेशी था। वे उनमें से नहीं थे, जो खाते-पीते इस देश का थे और गुणगान यूरोप का गाते थे। दयानन्द के इस गुण को देखते हुए टी.एल. वास्वानी ने कहा था कि दयानन्द की देशभक्ति का आधार उसका आर्य आदर्श के लिए प्रेम था। उनकी देशभक्ति उन लोगों के समान नहीं थी जो मुख पर भारत रखते हैं किन्तु भोजन, वस्त्र, भाषा तथा विचारों में यूरोपीय आदर्श बरतते हैं।

जब भारतीय स्वदेश भूल चुके थे, उनका स्वाभिमान खो चुका था, हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा को दीमक लग गई थी तथा हिन्दू संस्कृति तिल-तिल जल रही थी। उस समय दयानन्द ने लोगों को एक ईश्वर, एक धर्म, एक ध्वज तथा एक ही ग्रन्थ की प्रभुसत्ता में लाकर, आपसी भेदभाव मिटाकर भारत में राजनैतिकता एकता स्थापित करने का स्वप्न देखा था और इसमें काफी हद सीमा तक सफल रहे। भारतीयों को इस देश की गौरव गरिमा का परिचय देते हुए राष्ट्रीय विचारधारा के जनक ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्ण भूमि है क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है, जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते ही स्वर्ण अर्थात् धनी हो जाते हैं। वे देशवासियों को स्मरण दिलाते हुए आगे लिखते हैं कि सृष्टि से लेकर पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम राज्य था।

महर्षि दयानन्द की विचारधारा, स्वदेश प्रेम तथा स्वदेशाभिमान को देखते हुए एक पाश्चात्य लेखक ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि-दयानन्द की शिक्षाओं की मुख्य प्रवृत्ति हिन्दुत्व का सुधार करने की उतनी नहीं है जितनी उसे उन विदेशी प्रभावों के विरूद्ध प्रतिशोध के लिए संगठित करने की है जो उनके विचार में उसका विराष्ट्रीयकरण कर रहे थे। महर्षि दयानन्द जब प्रचीन भारत का गौरव गान करते हैं तो उससे राष्ट्रीय विचारधारा का का पोषण करने वाले तत्त्वों में उत्तेजना मिलती है और उस तरूण राष्ट्रीय विचारधारा का सुषुप्त राष्ट्रीय अहंकार जाग उठता है, तथा आकाक्षाएं प्रज्वलित हो उठती हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने देश को सभी प्रकार की कुरीतियों, अन्धविश्वासों, पाखण्ड़ों, अनाचारों आदि से बचाने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द की इच्छा थी कि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो और इस राष्ट्र के निवासी अपने प्रचीन गौरव को लाने का प्रयास करें। महर्षि दयानन्द ने अपने विचारों की अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए आर्य समाज की स्थापना की। महर्षि दयानन्द विचारधारा से हमारे देशवासियों के मन में राष्ट्रीय अहंकार जाग उठा, उनकी आकाक्षाएं प्रज्जवलित हो गई जिनके कानों में निरन्तर यह शोकपूर्ण मन्त्र फूंका गया था कि भारत का इतिहास सतत अपमान, अधोपतन, विदेशियों की पराधीनता तथा बाह्य शोषण की शोचनीय गाथा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय विचारधारा ने लोगों में स्वदेशीयत की प्रेरणा फूंकी, बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी पैदा किए। महर्षि दयानन्द जी वास्तव में इस देश के लिए जन्मे थे, जिनका उद्देश्य केवल अपना भला नहीं अपितु संसार का उपकार करना था। महर्षि दयानन्द ने अपनी राष्ट्रीय विचारधारा से इस देश को जगाने का भरपूर प्रयास किया। महर्षि दयानन्द का जो लक्ष्य था, अपने गुरू को जो वचन दिया था उसी के अनुरूप उन्होंने सम्पूर्ण जीवन कार्य किया और अपने लक्ष्य को पूरा किया।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

''इदन्न मम'' का तात्त्विक विवेचन

ले.-श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री

''इदन्न मम'' विहित है या नहीं, इस विषय पर अनेक बार विचार चल चुका है और अब भी स्यात् विचाराधीन है। इस विषय में कुछ पंक्तियाँ यहां अपेक्षित हैं। हवन करते समय स्रुवा में बचे हुये घृत को पृथक् रखे हुए पात्र में छोड़ना चाहिये या नहीं, यही लेख का विवेचनीय विषय है।

यज्ञ का पारिभाषिक स्वरूप और 'इदन्न मम' की कल्पना

यज्ञ और याग दोनों ही शब्द 'यज्) धातु से बने हैं-इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। जब कोई कहता है कि अमुक व्यक्ति यज्ञ करता है तब 'स यजति' अथवा ''देवदत्तो यजति'' के रूप में यजति क्रिया का प्रयोग देखा जाता है। इस 'यजति' का क्या अर्थ है, इस पर यज्ञ-सम्बन्धी शास्त्रों में विचार मिलता है। इन शास्त्रों के अनुसार 'यजति' का अर्थ द्रव्य (सामग्री आदि) देवता (वेदमंत्र या इन्द्र आदि) और त्याग (अग्नि में प्रक्षेप) इन तीनों से सम्बन्ध रखता है। याग शब्द भी इसीलिये ऐसे अर्थ को ही प्रकट करता है। वस्तुतः याग वह है, जिसमें हवि आदि द्रव्यों से इन्द्र, वायु, सूर्य आदि देवता एवं वेदमंत्रों के उच्चारण के साथ अग्नि में प्रक्षेप अर्थात् त्याग किया जावे। कात्यायन श्रौतसूत्र १।२।१.२ में लिखा है कि अब यज्ञ की व्याख्या करेंगे और वह यज्ञ द्रव्य, देवता और त्याग से सम्बन्ध रखता है। आगे पुन कात्यायन ने १।६।६ में लिखा है कि देवता, आहवनीय मंत्र और क्रियाओं के स्थान में कोई प्रतिनिधि नहीं हो सकता है। इन्हें तो करना ही पड़ेगा। आगे चलकर २।२।२७ पर टीकाकार लिखता है कि मन्त्र सर्वत्र स्वाहाकारान्त ही पढ़ना चाहिए। होम पक्ष में 'इदं जातवेदसे इदन्न मम'' ऐसा त्याग करना चाहिए। पक्षान्तरों में यज्ञ का अभाव होने से त्याग नहीं करना चाहिए। 'अच्युत ग्रंथमाला' से छपे हुये शतपथ ब्राह्मण की भूमिका के १६ वें पृष्ठ पर विद्याधर शर्मा लिखते हैं कि ''देवता को उद्देश्य में रखते हुये अग्नि में प्रक्षेप-विशेष द्रव्यत्याग का नाम याग है। मीमांसा में भी याग का अर्थ करते हुए जैमिनि ४।२।२८-२९ पर लिखते हैं कि यजति का अर्थ द्रव्य, देवता और क्रिया के समुदाय में चरितार्थ है। जुहोति का अर्थ आसेचन से अधिक है। अर्थात् याग और होम का भेद है। यहां पर ऐसा समझना चाहिए कि आहवनीय आदि अग्नि में छोड़ी हुई हवि का जो प्रक्षेप है, यही होम कहा जाता है। वह दो प्रकार का है-प्रधान होम और अङ्ग होम। ''अग्निहोत्रं जुहोति'' प्रधान होम है और अपने फल उद्देश्य से विहित हैं। इनमें प्रक्षेपमात्र ही धातु का अर्थ नहीं है, किन्तु प्रक्षेप, उद्देश्य, त्याग तीनों ही अर्थ हैं। होम में भी ये तीनों अंश होते हैं और याग में भी। परन्तु याग में तीनों अंशों के होते हुये भी प्रक्षिप्तविशिष्ट द्रव्यत्याग की विशेषता है। होम में जहां तीनों अंशों की समप्रधानता है, वहां याग में प्रक्षेप की अङ्गता (प्रधानता है) और शेष दोनों की समप्रधानता या समानता है। यही होम और याग का भेद है। अतः यह सुतराम् स्पष्ट हैं कि याग का अर्थ देवता, द्रव्य और त्याग का समुदाय है। इस त्याग को जतलाने के लिये ''इदन्न मम'' की प्रक्रिया-वरती जाती है। 'इदं जातवेदसे इदन्न मम' का अर्थ है कि यह त्याग जातवेदस के निमित्त है, मेरा नहीं। आहुतिप्रदान के निमित्त एवं मंत्र में आये देवता के नाम लेकर त्याग की प्रथा इसी आधार पर होने लगी, ऐसा मालूम पड़ता है।

''इदन्न मम'' से जलपात्र में शिष्ट घी छोड़ने की प्रथा कैसे पड़ी

''पाकयज्ञेष्ववत्तस्यासर्वहोमः, हुत्वा शेषप्राशनम्'' अर्थात् पाकयज्ञों में सब होम नहीं किया जाता। हवन कर के बचे हुए का प्राशन किया जाता है। कात्यायन के इस वचन से होम से बचे हुये का प्राशन सिद्ध होता है। पारस्कर गृह्यसूत्र १।२।१२ में लिखा है कि यज्ञ करके शेष को खाया जाता है। इस सूत्र पर हरिहर लिखते हैं कि अग्नि में डालकर खाता है। यहाँ पर प्राशन का उपदेश होने से खाने योग्य की आकांक्षा है, तो क्या वह हुतशेष है, या अन्य कोई वस्तु? उत्तर है कि पाकयज्ञों में सबका होम नहीं होता। हवन करके शेष का भक्षण होता है। ऐसा ही कात्यायन का मत है। स्रुवा से ग्रहण किये हुए होम-द्रव्य का सब हवन करने का निषेध होने और हवन से बचे का प्राशन विहित होने से ऐसा ही प्रतीत होता है। सारी आहुतियों का स्रुवा में बचा होम द्रव्य 'संस्रव' रूप में प्रसिद्ध है। यह एक पृथक् पात्र में डाला जाता है और वह खाया जाना चाहिए। इस पर गदाधर अपने भाष्य में लिखता है कि परिस्तरण बर्हि से हवन करके दूसरे पात्र में स्थापित होम-शेष द्रव्य को खाता है। स्रुवा आदि से जो ग्रहण किया है, उसका हवन करके कुछ बँचा करके दूसरे बर्तन में रखना चाहिए।

पुनः अपनी पद्धति में हरिहर कहता है कि ''प्रजापतये स्वाहा'' ऐसा मन से ध्यान करते हुए आधार करता है। 'इदं प्रजापतये' ऐसा कहकर त्याग करके हुतशेष को एक दूसरे पात्र में डाले। इन्द्राय स्वाहा करके इदमिन्द्राय ऐसा कह कर त्याग करके वैसा ही करे। परन्तु यहां पर ही अपनी पद्धति में गदाधर इससे विलक्षण लिखता है। वह कहता है कि मनसे पूर्वाघार करे। ''इदं प्रजापतये स्वाहा'' इदं प्रजापतये न ममेति-ऐसा कहकर त्यागान्त से अग्नि में द्रव्य को छोड़े। पुनः उसी स्थल पर इदं प्रजापतये न ममेति-ऐसा कहकर त्याग करने को लिखता है। इस पर हरिहर ने पात्र में छोड़ने को लिखा है। हरिहर के अनुसार होम से स्रुवा में शेष रहे द्रव्य का पृथक् पात्र में छोड़ना प्रकट होता है और गदाधर के अनुसार इदन्न मम से त्याग करके अग्नि में छोड़ना विदित होता है। इस प्रकार यह यहाँ पर सुतराम् स्पष्ट है कि ''इदन्न मम'' से हवन करने से बचे हुये द्रव्य को पात्र में छोड़ने की प्रथा का उद्भव ''त्याग'' की धारणा को लेकर किया गया।

इस विषय में महर्षि दयानन्द के विचार

महर्षि दयानन्द ने इस विषय में क्या लिखा है, इसका यहां पर दिग्दर्शन कराया जाता है। आचार्य ने संस्कारविधि के गर्भाधान प्रकरण में पृ० ३५ (शताब्दी संस्करण ग्रन्थमाला) पर लिखा है कि यदस्य कर्मणो अत्यरीरिचम इस मंत्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवें। जो इन मंत्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे घरे हुये कांसे के एक पात्र में इकट्ठा करते गये हों-जब आहुति हो चुके तब उस आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिरपर्यन्त सब अङ्गों पर मर्दन करके स्नान करे।

पुनः पृष्ठ ३३ पर आचार्यवर लिखते हैं कि बीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवें। इसके पश्चात् भात की आहुति देने के लिए यह विधि करना। अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एक रस हो जाए पश्चात् नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक आहुति अग्नि में देवें और स्रुवा का शेष आगे धरे हुये कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे। पृ० २५ पर लिखते हैं कि सबको विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

यहां इन प्रमाणों से दो बातें प्रकट होती हैं। प्रथम जो ''इदन्न मम'' करके स्रुवा में बचा घृत है, उसे उपयोग में लाना। दूसरी बात यह है कि हवन करने से हवन के पात्र में बचे हुये का अर्थात् हुतशेष का भक्षण करना। ऋषि के सन्दर्भो से यह नहीं प्रकट होता है कि ''इदन्न मम'' बोलकर के पात्र में छोड़ा हुआ शेष ही हुतशेष है। वस्तुतः यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि स्रुवा से बचा हुआ द्रव्य अलग है और हुतशेष अलग है। हुतशेष वह है, जो यज्ञ करने से द्रव्यवाले पात्र में शेष रह गया है। 'इदन्न मम' बोलकर अलग पात्र में छोड़ा जाने वाला द्रव्य नहीं। संस्कारविधि के पृ० १४८-१४९ के उनके लेख से भी यही निर्देश मिलता है। वे लिखते हैं-तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है, उसको एक पात्र में निकाल कर उसके ऊपर स्रुवा से घृतसेंचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा थोड़ा भात दोनों जने लेके इनमें से प्रत्येक मंत्र से एक एक करके ४ स्थाली पाक अर्थात् भात की आहुति देनी। तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल उस पर घृत-सेंचन और दक्षिण हाथ रख के इन तीन मंत्रों को मन में जप कर वर उस भात में से प्रथम थोड़ा सा भक्षण करके-इत्यादि। यह शेष रहा हुआ ही वस्तुतः हुतशेष कहा जा सकता है। अतः यह भली प्रकार स्पष्ट समझना चाहिए कि हुतशेष का अर्थ 'इदन्न मम' पात्र वाला द्रव्य नहीं; अपितु उसका पात्र में बचे हुये घृत आदि से तात्पर्य है।

उपसंहार

(शेष पृष्ठ 6 पर)

मूल्यों का पतन कारण एवं निवारण

ले.-नरेन्द्र आहूजा

विश्व का आध्यात्मिक गुरु, प्राचीनतम संस्कृति, ईश्वरीय वाणी के रूप में प्राचीनतम ग्रंथ वेद, सबके आदर्श अनुकरणीय मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन चरित्र, आप्त धर्म के पालन, गीता जैसे गूढ़ ज्ञान के प्रदाता योगीराज कृष्ण आधुनिक समय में वेदों को पुन: स्थापित करने वाले महान समाज सुधारक स्वामी दयानन्द पर्यन्त कितने उदाहरण हैं जिनकी शिक्षायें किसी के लिए भी अनुकरणीय हो सकती है। इस पर वर्तमान काल में कितने टी.वी. चैनल आस्था, संस्कार, जागरण आदि जो निरंतर विभिन्न धर्म गुरुओं के प्रवचनों की वर्षा कर रहे हैं। कोई भी कथावाचक किसी भी शहर या कस्बे में पहुंचे तो आज भी कितनी भीड़ स्वत: स्फूर्त जुट जाती है प्रवचन सुनकर स्वयं को धन्य करने के लिए। शायद हमारा देश एक ऐसा देश है जिसके नागरिक अपना कितना कीमती समय भगवान की पूजा-अर्चना, उपासना, तीर्थ-यात्राओं या दर्शनों में लगाये हैं।

इस सबके बावजूद कितनी बड़ी विसंगति है कि आज हमारे देश में अनाचार, दुराचार सामाजिक कुरीतियां, पाखंड भी उतनी ज्यादा तेजी से बढ़ रहे हैं आखिर क्या कारण है कि इतनी विविध तेजी से बढ़ती दिखाई दे रही धार्मिक आस्थाओं के बीच उससे भी ज्यादा तेजी से समाज अधोगति की ओर, आध्यात्मिक शिखर से पतन की गहरी अंधी खाईयों की तरफ लुढ़क रहा है। क्यों समाज में निरंतर टूटन, पाखंड, कुरीतियां, भ्रान्तियां, धार्मिक विद्वेषभाव, विघटन अलगाववाद, जातिगत संघर्ष, असहिष्णुता, प्रान्तीयता, सिर उठाती नई नवेली अलगाव पैदा करती भावनायें, आतंकवाद, चरमराती कानून व्यवस्था, भक्षक बने कानून के रक्षक हर मुद्दे पर टूटन ही टूटन तिस पर देश के राजनेताओं में इच्छा शक्ति का अभाव बस साम-दाम, दंड-भेद से सत्ता में बने रहकर सत्ता के मद में चूर शोषण करके अपना पोषण करते राजनेता आदि। आखिर क्या कारण हैं आज समाज में इस संक्रमण काल के लिए आखिर कौन सी स्थितियाँ उत्तरदायी हैं। जिस प्रकार रोग के निदान के लिए कारण जान लेना आवश्यक है इसी प्रकार सामाजिक अधोगति के कारण जानना इसके निवारण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

1. हमारी सनातन पुरातन वैदिक संस्कृति हमारे लिए गौरव का विषय है पर वर्तमान काल में हम इस संस्कृति का कितना अनुसरण कर रहे हैं यह विचारणीय विषय है। हमारी वंश परम्परा महान है पर आज हम क्या हैं कहाँ हैं इस पर विचार करना आवश्यक है।

2. हमारी वैदिक संस्कृति श्रेष्ठतम है इस पर किसी को कोई संशय नहीं पर हम स्वयं अपनी इस पुरातन संस्कृति के बारे में क्या जानते हैं यदि हम अपनी संस्कृति से परिचित नहीं हैं तो क्या अनुकरण कर पायेंगे। बिना रास्ता जाने दिशा भटक कर हम किधर जा रहे हैं यह विचारणीय है। आज हमारी हालत भेड़ों के झुंड में जन्मकाल से रहकर पहचान भूल चुके सिंह शावक की हो चुकी हैं हमें स्वयं को पहचानना होगा।

3. हमारी महानतम मान्यताओं में समय के साथ कुछ वर्ग विशेषतया एक वर्णन विशेष के लोगों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के वशीभूत लोगों की अंधश्रद्धा का लाभ उठाकर अन्धविश्वासों, कुरीतियों, पाखंडों को जोड़ दिया है। जिस प्रकार मैदानी भाग में प्रवेश के बाद पवित्र गंगा को हर शहर का गंदा नाला उसे प्रदूषित कर देता है इसलिए गंगा की सफाई की आवश्यकता पड़ती है ठीक उसी प्रकार अब हमें अपने विवेक की छलनी से छान कर कुरीतियों को दूर करना होगा। तुलसी, कबीर, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

4. समाज में बुरी तरह से कोढ़ की भाँति फैल चुकी युवा वर्ग में नशे की प्रवृति, दहेज प्रथा के कारण कन्या भ्रूण हत्या, दहेज का दिखावा, युवावर्ग में बढ़ती अनैतिकता, फैशन के नाम पर नंगापन, नारी आजादी के नाम पर टूटती मर्यादायें आदि कुरीतियाँ आपत उपचार माँगती हैं अन्यथा समाज के भविष्य की तस्वीर भयावह दिखाई देती है।

5. हम कभी आध्यात्मिक गुरू थे, विश्व हमारा अनुकरण करता था पर शायद लंबी गुलामी के बाद हमें पिछलग्गु बनकर रहने की आदत हो गई है। आज भी तथाकथित विकास के नाम पर हम पाश्चात्य अंधानुकरण कर रहे हैं। इस पाश्चात्य अंधानुकरण में भी हम उनकी अच्छी आदतें राष्ट्रवाद, मेहनत, नए अन्वेषण, वैज्ञानिक प्रगति आदि नहीं सीख रहे अपितु जींस, पिज्जा, बर्गर, कोक, नंगेपन की भौंडी नकल अवश्य कर रहे हैं। यह पाश्चात्य अंधानुकरण हमें हमारी संस्कृति से काट रहा है। टी.वी. चैनलों आदि मीडिया के माध्यम से इसका तीव्र प्रहार हमारे दिलोदिमाग पर हो रहा है। बड़े से बड़ा वट वृक्ष भी जब अपनी जड़ों से कट जाता है तो अंतत: सूखकर ठूंठ बनकर गिर पड़ता है।

6. हमारी विकास की परिभाषा के मायने बदल चुके हैं हम बड़ी तीव्र गति से सेंसक्स के बढ़ते सूचकांक की भाँति भौतिकतावाद, बाजारवाद और भोगवाद का शिकार होकर विनाश की ओर सम्मोहित होकर लुढ़क रहे हैं। झूठी तीव्र चकाचौंध में सम्मोहित हम अपने संभावित विनाश को नहीं देख पा रहे। बाजारवाद के इस युग में हमारे समाज में मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है हर चीज हर सामग्री यहाँ तक कि हमारा दीन ईमान सब विनिमय की वस्तु हो चुका है हम बिकने को तैयार बैठे हैं बस खरीददार चाहिए। विनाश की तरफ तेजी से दौड़ते तथाकथित विकासशील समाज को रुक सोचने और दिशा परिवर्तन पर विचार करना होगा।

7. भौतिक सुख साधनों सम्पदा की अंधी होड़ में नैतिक मूल्यों का लोप आज के समाज की त्रासदी है। नैतिक मूल्यों की स्थापना और समाज को क्षणिक भौतिक सुख और आनन्द की स्थिति में अन्तर महसूस करना होगा।

8. आजादी के बाद भी हम गुलामी की मानसिकता से उबर नहीं पाए। भावी पीढ़ी के निर्माण के लिए गुलामी की प्रतीक मैकाले के दत्तक पुत्र तैयार करने वाली शिक्षा प्रणाली को हमने उसमें चरित्र निर्माण, मानव रचना, अपनी संस्कृति से परिचय या नैतिक मूल्यों को कोई स्थान नहीं दिया गया। मैकाले की यह शिक्षा पद्धति शायद सामाजिक अधोगति का बहुत बड़ा कारण है जो आज भी अच्छे क्लर्क, इंजीनियर, डाक्टर, मैनेजर आदि तो बना रही है पर अच्छे इंसान बनाने की कोई व्यवस्था नहीं है। 'ब्रेन-ड्रेन' या फिर 'आउट सोसिईंग' की शिकार आज की युवा शक्ति धन लोलुपता या भौतिकतावाद में विदेशी आकांओं की सेवा में लगी है।

9. धर्म जाति भाषा क्षेत्र जैसे अपनी सुविधा के मुद्दों पर समूचे समाज को वोट बैंकों में तोड़कर आपस में लड़वाते रहने वाली राजनैतिक लोकतांत्रिक प्रणाली भी सामाजिक पतन के लिए उत्तरदायी है। सामाजिक तनाव पैदा करके साम-दाम, दंड-भेद से सत्ता हथियाने की राजनीति और सत्ता पाकर सत्ता मद में चूर होकर शोषण कर स्वयं के पोषण की प्रवृति ने राजनीति को व्यापार बना दिया है जिसके कोई नियम नहीं हैं। कानून बनाने वाली विधायिका और पालन करवाने वाली नौकरशाही स्वयं को कानून से उपर समझती है और शोषण को जन्मसिद्ध अधिकार मानती हैं। इस व्यवस्था की खामियों को दूरकर इसकी भावना को समझना होगा।

10. धार्मिक उन्माद वर्ण या जातिगत संघर्ष पैदाकर समाज को वोट बैंकों में तोड़ने की राजनैतिक दलों की साजिशों के साथ वर्ग संघर्ष के नाम पर अलगाववाद, नक्सलवाद, उग्रवाद को भड़काना भी सत्ता प्राप्ति का साधन बन चुका है। सत्ता प्राप्ति का रास्ता धनबल और बाहुबल से ही तय किया जा सकता है। राजनीति के अपराधीकरण से चला यह अनैतिक सफल अब अपराधियों के राजनीतिकरण तक

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 4 का शेष-"इदन्न मम" का तात्त्विक विवेचन

ऊपर इस विषय के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण दिये गये, अब इनसे क्या परिणाम निकलता है, इस पर विचार किया जाता है। प्रथम बात तो यह यहां परनिश्चित समझनी चाहिए कि "इदन्न मम" से पात्र में पृथक् स्रुवा से बचे घी के छोड़ने की प्रथा यज्ञ के त्यागभूत अङ्ग पर आधारित है। यह करना चाहिए या नहीं, इस पर विचार अपेक्षित है। पौराणिक विद्वानों के दो दृष्टिकोण ऊपर दिखलायी पड़े। उसमें गदाधर का विचार है स्रुवा में बचे द्रव्य को पृथक् पात्र में रखा जावे और हवन के बाद शेष खाया जावे। परन्तु ऐसा लिखने पर जैसा पहिले लिखा गया है गदाधर पद्धति में इससे कुछ थोड़ा विपरीत लिखता है। वहां वह ऐसा लिखता है इस "इदन्न मम" त्याग करके अग्नि में द्रव्य छोड़े। इसमें पूर्व बात से विलक्षणता मालूम पड़ती है। अर्थात् एक स्थान पर वह स्रुवा से बचे को पात्र में छोड़ने को कहता है।

हरिहर सभी आहूतियों में स्रुवा में बचे को "इदन्न मम" पृथक् पात्र में रखना मानता है और उसका भक्षण मानता है। उसका मत सर्वत्र एक सा है। परन्तु इन दोनों अग्नियों का यह विचार कात्यायन के श्रौतसूत्र ६।१०।२६-२७ के "पाकयज्ञेष्वव-त्तस्यासर्वहोम:, हुत्वा च प्राशनम्" आदि वचनों पर आधारित है। इसलिए इस प्रसंग में इन वचनों का विचार आवश्यक है। वस्तुत कात्यायन का वचन सर्वत्र यज्ञ में यह विधि लागू करने का द्योतक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि उसमें "पाकयज्ञ" पद पढ़ा है। अर्थात् यह विधि पाकयज्ञों में ही बर्ती जाने वाली है। यह पक्ष अग्निहोत्र में भी जाता है। क्योंकि अग्निहोत्र भी श्रौतकर्म है। गृहाग्नि पर जो स्मार्त यज्ञ होते हैं, वे सब पाक यज्ञ हैं। उनमें स्रुवा में लिए हुये सम्पूर्ण द्रव्य का होम नहीं करना चाहिये। बचे हुये का भक्षण विहित है। परन्तु "प्रतिहोम भक्षणार्थे किञ्चित् परिशेषणीयम्" अर्थात् प्रत्येक होम में भक्षणार्थ कुछ बचा लेवे-यह कोरी पौराणिक कल्पना है। हां पाकयज्ञ में प्रत्येक आहुति में कुछ शेष रखे, यह ठीक है। उससे अन्यत्र यह ठीक नहीं मालूम पड़ता है। हरिहर का यह कहना कि इस "इदन्न मम" से त्याग में छोड़े हुये से बचे हुये पात्र में अलग स्रुवा से चुवाये हुये द्रव्य का नाम स्रवभाव या संस्रवभाग है, यह भी ठीक नहीं। संस्रवभाग इससे पृथक् वस्तु है। उसका ऐसा मानना ग़लत है। कात्यायन "संस्रवभाग" का अर्थ इस प्रकार करते हैं। स्रुचो प्रगृह्णाति सस्स्रवभागा इति (का० श्रौ० ३।६।१७)। अर्थात् यदि स्रुवा में आदि में घी लगा हुआ रह जावे तो संस्स्रवभागा इस यजुर्वेदीय (२।१८) मंत्र से स्रवभाग की आहुति देवे। इसके देवता विश्वेदेव हैं। परन्तु यदि संस्रवान् बचा हो तभी, नहीं तो नहीं। टिप्पणी में श्री विद्याधर शर्मा लिखते हैं-अतश्च यत्र कर्मणि पूर्वकृतहोम-सम्बन्ध्याज्यं पात्रे संलग्ने भवति, तत्र सर्वत्रापि अयं होनो भवत्येव। स्रुक्स्थस्याज्यस्य पूर्वमेव निरवशे-षितत्वात् संस्रवाणां न यागाङ्गत्वम्-कात्यायन श्रौत। अर्थात् जहां पर पूर्वकृत होम-सम्बन्धी घृत पात्र में लगा हुआ रह जाता है, वहां पर सर्वत्र यह स्रवभाग होम होता है। स्रुवा के घी के पहले ही समाप्त हो जाने से संस्रव को याग का अङ्ग नहीं कहना चाहिए। इसलिए यहां यह पूर्णतया स्पष्ट है कि "इदन्न मम" से स्रुवा से बचे हुये अलग पात्र में छोड़े गये घृत को संस्रव नहीं कहा जा सकता। यदि यह संस्रव भाग है, तो फिर यह तो आहुति दे दिया जावेगा फिर खाने के लिये क्या रहेगा?

यहाँ पर गदाधर और हरिहर आचार्यों के विचारों के विवेचन से यही परिणाम निकला कि वे कहीं पर तो सही हैं और कहीं पर ग़लत। परन्तु उन्होंने अपनी जो भी कल्पना की है उसका आधार कात्यायन को माना है। कात्यायन पाक यज्ञ में ही ऐसा विधान करते है। अत: यह निश्चित है कि पाकयज्ञ में ऐसा करना चाहिए, अन्यत्र नहीं। इसके अतिरिक्त यज्ञों में इस प्रकार की कल्पना कोरी पौराणिक है।

दूसरी बात यह है कि यागों में त्याग की प्रधानता है। अत: वहाँ पर "इदन्न मम" से यह त्याग की विधि बर्ती जाती है, सर्वत्र नहीं। इसके अतिरिक्त यह त्याग-विधि वहीं पर "इदन्न मम" के साथ बर्ती जाती है, जहां देवता का नाम स्पष्ट करके आहुति दी जाती है। कहीं कहीं पर मंत्र ही होते हैं और इदन्न मम का वहां प्रयोग भी नहीं होता। फिर वहां पात्र में घृत कैसे छोड़ा जा सकता है? जैसे सायं प्रात: काल में "सूर्यो ज्योति:" और अग्निज्योति: से आहुतियां दी जाती है, परन्तु इनमें देवता के नाम से "इदन्न मम" का प्रयोग नहीं है। यहाँ पर इदन्न मम की विधि भी नहीं चलायी जा सकती। अत: जहाँ पर इदन्न मम से अलग पात्र में स्रुवा के शेष घृत को छोड़ने की विधि हो, वहां पर वैसा करना चाहिए। जहां पर नहीं है, वहाँ पर नहीं।

ऋषि दयानन्द ने भी जहां पर करना आवश्यक था, वहाँ पर "इदन्न मम" से वैसा करने को लिखा है। जहां पर नहीं, वहां पर नहीं लिखा। अत: मन्तव्य यही है कि जहां पर ऋषि ने "इदन्न मम" बोलकर स्रुवा में बचे घृत को दूसरे पात्र में छोड़ने और उसके प्रयोग करने को लिखा है वहां करना चाहिए। जहां पर नहीं लिखा है, वहां पर नहीं करना चाहिए। जैसे ऊपर दिये गये गर्भाधान संस्कार में उन्होंने ऐसा करने को लिखा है, अत: वहां करना चाहिए। सामान्य प्रकरण या दैनिक यज्ञ आदि में ऐसा करने का विधान नहीं किया है, अत: यहां पर नहीं करना चाहिए। आशा है आर्य समाज के विद्वान् इस पर विचार करेंगे। मैंने यह निर्देशमात्र करके अपने मित्र आर्य मनीषियों तक इसे पहुँचाना अपना कर्तव्य समझा।

इन चारों भाष्यकारों ने मूल के आधार पर स्पष्ट ही हुतशेष को पृथक् पात्र में रखने और उसका प्राशन भक्षण लिखा है। उपर्युक्त उद्धरणों से इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं रहा।

गदाधार भाष्य पृ० ३१ पं० २० का जो यह आशय समझा जाता है-कि "हरिहर के अनुसार होम से स्रुवा में शेष रहे द्रव्य में पृथक् पात्र में छोड़ना प्रकट होता है, और गदाधर के अनुसार 'इदं न मम' से त्याग करके अग्नि में छोड़ना विदित होता है"। इसमें हमारा कहना है कि-"इदं प्रजापत्ये न भवति त्यागान्तेऽग्नौ द्रव्यप्रक्षेप:" का यह अर्थ है कि द्रव्य का प्रक्षेप (घृतादि का अग्नि में डालना) कब करो यह बतलाया, कि स्वाहा की समाप्ति पर द्रव्य-प्रक्षेप न करके 'इदं न मम' उच्चारण के पश्चात् द्रव्य डालने का विधान किया गया है। उसके पश्चात् हुतशेष-प्राशन का स्पष्ट उल्लेख है ही। इसका यह अर्थ नहीं कि त्याग के अन्त में-अर्थात् स्वाहा पर द्रव्य-प्रक्षेप कर, इदं न मम से त्याग कर अग्नि में डालना नहीं-अपितु स्वाहा पर द्रव्य-प्रक्षेप न करके 'इदं न मम' स्वत्वत्याग के पश्चात् ही अग्नि (अग्निकुण्ड में) द्रव्य का प्रक्षेप करे-ऐसा अर्थ है। अर्थात् हुतशेष का प्राशन सर्व सम्मत है।

पृष्ठ 5 का शेष-मूल्यों का पतन कारण एवं निवारण

पहुँच चुका है। यह स्थिति अत्यंत खतरनाक है। नेता अपराधी और अधिकारी का नापाक गठजोड़ सत्ता का शक्ति केन्द्र बन चुका है।

11. समाज में धर्मपरायणता के स्थान पर धर्मभीरूता बढ़ रही है। हर व्यक्ति मन ही मन अपने दुष्कर्मों के फल को लेकर कभी न कभी परेशान हो जाता है तो यह गुरूडमवाद फैलाए स्वयं को ईश्वरीय अवतार घोषित कर रहे तथाकथित कथावाचक दान दक्षिणा लेकर पापों से मुक्ति का सरल उपाय बताकर अभयदान दे देते हैं। इससे अपराधी अपराध भावना से मुक्त हो फिर से दुष्कर्म करने की तरफ प्रवृत हो जाता है। यही धर्मभीरू लोगों की भीड़ ही इन अवतारों की सभाओं में शोभा बढ़ाती है।

12. प्रेम शब्द अपना व्यापक यौगिक अर्थ खो चुका है आजकल प्रेम का अर्थ मात्र विपरीत लिंगों में वासना के लिए रह गया है जबकि भक्त का भगवान के प्रति, पिता का पुत्र वा पुत्री के प्रति, माता का बेटे बेटी के लिए, भाई-बहन का प्यार सब प्रेम की व्यापक परिभाषा में आते हैं।

13. हम परिवारों में बच्चों को संस्कार देने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं। बच्चों को जो कहा जाए उसे सुनते नहीं है अपितु जो वह देखते हैं उसे सीख जाते हैं। हम अपना जीवन चरित्र अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए अनुकरणीय बनाने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुए हैं। अपितु आने वाली पीढ़ी इस विनाश मार्ग पर हमसे ज्यादा तेजी से चल रही है। परिवार विघटित हो रहे हैं बच्चे बड़ों की इज्जत करना भूल चुके हैं शायद बड़े ही इसके लिए अधिक उत्तरदायी है।

यह कुछ स्थितियाँ हैं जो कि समाज की अधोगति का कारण है शायद इन्हीं कारणों के विवेचन में ही इनका निवारण भी छिपा है। अत: आज समय की माँग है कि हम विनाश के इस मार्ग को छोड़ दें अन्यथा आने वाली पीढ़ियाँ जब हमसे हमारे पतन का कारण पूछेंगी तो हमारे पास कोई उत्तर नहीं होगा।

पृष्ठ 2 का शेष-उपनिषदों में शिक्षा का परम उद्देश्य

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

अथ परा यया तदक्षरम्-धिगम्यते।। मुण्डक उप. 1.1.5

अर्थ-(तत्र) उनमें (ऋग्वेदः) ऋग्वेद (यजुर्वेद) यजुर्वेद (सामवेदः) सामवेद (अथर्व वेदः) अथर्ववेद (शिक्षा) शिक्षा (खर और वर्णादि का उच्चारण विधि) (कल्पः) कल्प, जो वेद मंत्रों के विनियोग पूर्वक, कर्मकाण्ड का विधान करता है, (व्याकरण) शब्द शास्त्र (निरूक्तम्) निरूक्त जिसमें वेद में आये शब्दों का निर्वचन किया गया है (छन्दः) छन्द शास्त्र (ज्योतिषम्) ज्योतिष विद्या (नक्षत्र विज्ञान) (इति) ये (अपरा) अपरा हैं (अथ) और (परा) परा (वह विद्या है) (यया) जिससे (तदक्षरम्) अविनाशी ब्रह्म (अधिगम्यते) जाना जाता है।

फिर मुण्डक उपनिषद् में आत्मा, परमात्मा, प्रकृति और सृष्टि उत्पत्ति का विशद वर्णन हुआ है।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरूषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।

अ प्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः पुरः।। मु. उप. 2.1.2

अर्थ-(हि) निश्चय (दिव्यः) प्रकाशमान (अमूर्तः) मूर्ति रहित (पुरूषः) सर्वव्यापक (स) वह ब्रह्म (बाह्य आभ्यान्तरः) बाहर और भीतर (सर्वत्र) वर्तमान (अजः) अजन्मा (हि) निश्चय (अप्राणः) प्राण रहित (अमनाः) मन रहित (शुभ्रः) पवित्र (परतः अक्षरात्) सूक्ष्म अविनाशी (प्रकृति और जीव) से (परः) सूक्ष्म है।

तृतीयः मुण्डक, प्रथमः के प्रथम मंत्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति के आपसी सम्बन्ध को रूपकालंकार में बताया गया है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय समानं वृक्षं परिष स्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनशनन्नन्यो अभिचाक शीति।। मु. उपा. 3.1.1

अर्थ-(सयुजा) साथ रहने वाले (सखाया) मित्र के समान (द्वा) दो (सुपर्णा) पक्षी (समानम्) एक ही (वृक्षम्) वृक्ष को (परिषस्वजाते) आश्रय करते हैं (तयोः) उन दोनों में से (अन्यः) एक जीवात्मा (पिप्पलम्ः स्वादु) स्वादिष्ट फलों को (अत्ति) खाता है (अन्यः) दूसरा (परमात्मा) (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) साक्षीभूत देखता रहता है।

फिर माण्डूक्य उपनिषद् में ब्रह्म की महत्ता का वर्णन है।

ओभित्येत दक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।

भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।

यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।। मा.उप. 1

अर्थ-(ओम् इति) ओ३म्) (एतद्) यह (अक्षरम्) अक्षर है। (तस्य) उस ओ३म् का (इदम्) यह (सर्वम्) सब (उप व्याख्यानम्) फैलाव है (भूत) भूत काल (भविष्यत्) और भविष्यकाल (इति) यह (सर्वम्) सब (ओङ्कारः) ओंकार (एव) ही है। (च) और (यत्) जो (अन्यत्) इसके अतिरिक्त (त्रिकाल) तीन काल से (अतीतम्) बाहर है (तद् अपि) वह भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

ऐतरेय उपनिषद् का प्रारम्भ ही ब्रह्म के स्वरूप निरूपण से हुआ है।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्किञ्चन मिषत्।

स ईक्षतलोकानु सृजा इति।। ऐत. उप. 1.1.1

अर्थ-(आत्मा वा इदम् एकः एव अग्रे आसीत्) निश्चय यह एक आत्मा (ब्रह्म) ही पहले था। (मिषत् अन्यत् किञ्चन न) आंख झपकाने वाला (चेतन प्राणी) और कोई नहीं था। (सःईक्षत लोकान् नु सृजै इति) उसने सोचा कि लोकों की रचना करूं।

फिर सृष्टि रचना का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

तैत्तिरीय उपनिषद में तीन वल्लियां हैं। प्रथम वल्ली शिक्षा, दूसरी वल्ली ब्रह्मानन्द और तीसरी भृगु वल्ली कहलाती है।

ओ३म् ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता। सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायाम् परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति। तस्माद्वाएतस्मादात्म न आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः ओषधभ्योऽन्नम् अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरूष। स वा एष पुरूषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदम्येष श्लोको Öß ḍ̀ Ð तै.उप. ब्रह्मानन्द वल्ली श्लोक दूसरा

अर्थ-(ब्रह्मवित् परम् आप्नोति) ब्रह्म वेत्ता परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। (तत्, एषा, अभि उक्ता) इस विषय में यह (ऋचा) कही गई है। (सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म) ब्रह्म सत्य, ज्ञान स्वरूप और अनन्त है। (यः) जो उसको (परमे व्योमन्) अत्यन्त और सूक्ष्म (गुहायाम) हृदयाकाश में (निहितम् वेद) निहित (स्थित, छिपा हुआ) जानता है। (सः सर्वान् कामान्) वह समस्त कामनाओं को (सह, विपश्चिताः, ब्रह्मणा, अश्नुते, इति) सर्व ब्रह्म के साथ मिलकर प्राप्त कर लेता है। (तस्मात्, एतस्माद्, आत्मनः, आकाशः सम्भूतः) निश्चय उस परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। (आकाशात् वायुः) आकाश से वायु (वायोः अग्निः) वायु से अग्नि (अग्नेः आपः) अग्नि से जल। (अद्भ्यः पृथिवी) जल से पृथ्वी (पृथिव्याः ओषधयः) पृथ्वी से औषधि। (ओषधीभ्यः अन्नम्) औषधि से अनन्त। (अन्नाद् रेतः) अन्न से वीर्य (रेतसः पुरूषः) वीर्य से पुरूष (सः वा एषः अन्नरस मयः) इसलिए निश्चित यह पुरूष अन्न रस मय है। (तस्य इदम् एव शिरः) उसका यह शिर है। (अयम् दक्षिणः पक्षः) यह शरीर का दाहिना अंग है। (अयम् उत्तरः पक्षः) यह बायां अंग है। (अयम् आत्मा) यह धड़ है। (इदम् पुच्छम् प्रतिष्ठा) यह पूंछ निकलने का स्थान, आधार है। (तत् अपि, एष, श्लोकः भवति) उसी का यह श्लोक है।

फिर श्वेताश्वतर उपनिषद् का तो कहना ही क्या? व्यक्तिगत रूप से मैं तो इसे ब्रह्म विद्या की श्रेष्ठतम पुस्तक मानता हूँ। इसमें तो ब्रह्म विद्या वादी लोग प्रारम्भ से ही सृष्टि उत्पत्ति के विभिन्न कारणों यथा काल, स्वभाव, नियति, आकस्मिक घटना, से पञ्चभूत, माता-पिता अथवा जीवात्मा, अथवा सहयोग सृष्टि का कारण है पर गहन चिन्तन करते हैं। फिर समाधि लगाकर संसार रूपी ब्रह्म चक्र को देखते हैं। इसके बाद ही ब्रह्म विद्या का वर्णन करते हैं।

ते ध्यान योगानुगता अपश्यन् देवात्म शक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्या-धितिष्ठत्येकम्।। श्वेता. उप. 1.3

अर्थ-तब (ते) ये ब्रह्मवादी ऋषि (ध्यान योगानुगताः) ध्यान योग में अनुगत (लीन) होकर (स्वगुणैः) (उसके) अपने गुणों से (निगूढाम्) गूढ़, अव्यक्त (देवात्म शक्तिम्) परमात्मा की दिव्य शक्ति को (अपश्यन्) देखते हुए (यज्ञ विचारने लगे कि) (यः) जो (महान् देव) (एकः) अकेला ही (तानि) उन पूर्वोक्त (कालात्मयुक्तानि) काल से लेकर आत्मा तक (आठों) (निखिलानि) समस्त (कारणानि) कारणों का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है। वह अकेला ही जगत् का कारण है।

ब्रह्मवादी ऋषियों ने समाधि में क्या देखा? यह तो स्वयं एक लेख की याचना करता है।

एको हि जालवानी ईशनीभिः सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिः।

य एवैक उद् भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्तिः।। श्वेता. उप. 3.1.

अर्थ-(यः) जो (एकः) अकेला ही (जालवान्) मायारूप जाल के बिछाने वाला (ईशनीभिः) अपनी शासकीय शक्तियों से (ईशते) सम्पूर्ण संसार पर शासन करता है और (सर्वान्) सब (लोकान्) लोकों को (ईशनीभिः) अपनी महान् शक्तियों से (ईशते) नियम में चलता रहा है। (यः) जो (एकः) अकेला (एव) ही (उद्भवे) संसार की उत्पत्ति (च) और (सम्भवे) स्थिति में (समर्थ है) (एतत्) इस ब्रह्म को (ये) जो (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) अमृत (अमर) (भवन्ति) हो जाते हैं।

इसके कुछ श्लोक को स्तुति के लिए चुने जाने वाले श्लोकों में श्रेष्ठतम हैं।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च देवतम्।

पति पतीना परमं पदस्तादविदाम देवं भुवने शमीड्यम्।। श्वेता. उप. 6.7.

अर्थ-(तम्) उस (ईश्वराणाम्) ऐश्वर्य सम्पन्नों में (परमम् महेश्वरम्) परमैश्वर्यवान् (च) और (तम्) उस (देवतानाम्) स्वाभियों में (पतिम्) सर्वश्रेष्ठ स्वामी और (परस्तात्) परे से भी (परमम्) परे (अनन्त) (भुवनेशम्) सब संसार के स्वामी (इड्यम्) बहुत स्तुति के योग्य (देवम्) परमात्मा देव को (विदाम) हम जानते हैं।

युवाओं को संस्कारवान् बना रहा आर्य वीर दल शिविर

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री प्रेम कुमार भारद्वाज गुरुकुल शिविर में पहुंचेः आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के कार्यों की भूरि-भूरि सराहना की

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम कुमार भारद्वाज जी विगत दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा द्वारा चलाये जा रहे गुरुकुल कुरुक्षेत्र में आर्य वीर दल शिविर में पहुंचे। इस अवसर पर महामंत्री श्री प्रेम कुमार जी के साथ आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान श्री राधाकृष्ण आर्य जी एवं शिविर के संयोजक श्री संजीव आर्य जी, महाशय जयपाल आर्य, आचार्य दयाशंकर शास्त्री, श्री पंकज आर्य, श्री संदीप आर्य, श्री राममेहर आर्य एवं विशाल आर्य। शिविर में नवयुवक व्यायाम करते हुये जबकि नीचे चित्र में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम कुमार भारद्वाज शिविर में आए नवयुवकों को सम्बोधित करते हुये। जबकि हरियाणा सभा के प्रधान श्री राधाकृष्ण आर्य जी बैठे हुये दिखाई दे रहे हैं। सभा अधिकारियों ने बच्चों के कार्यक्रम को भी देखा।

गुरूकुल कुरुक्षेत्र में चल रहे प्रान्तीय आर्य वीर दल शिविर में आए सैंकड़ों युवाओं में आर्य समाज के विद्वानों द्वारा संस्कारवान् बनाया जा रहा है। साथ ही उन्हें शारीरिक रूप से मजबूत बनाने के लिये योगासन भी सिखाए जा रहे हैं। यह आर्य वीर समाज में जाकर न केवल सामाजिक बुराईयों को दूर करेंगे बल्कि उन्नत राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी साबित होंगे। यह शब्द आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम कुमार जी ने गुरुकुल कुरूक्षेत्र में चल रहे शिविर के निरीक्षण के उपरान्त आर्य वीरों को सम्बोधित करते हुये कहे। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान श्री राधाकृष्ण आर्य, शिविर संयोजक संजीव आर्य, महाशय जयपाल आर्य, आचार्य दयाशंकर शास्त्री, वैदिक विद्वान पंकज आर्य, संदीप आर्य, राममेहर आर्य, विशाल आर्य आदि उपस्थित रहे। सभा महामंत्री श्री प्रेम कुमार जी ने कहा कि राष्ट्र का निर्माण नवयुवकों की भीड़ से नहीं हुआ करता है। राष्ट्र के निर्माण के लिए ऐसे लोगों की जरूरत पड़ती है जिनके जीवन में यौवन शक्ति का प्रवाह हो परन्तु साथ ही विवेक की मशाल भी जलती रहे। यदि जीवन में विवेक की मशाल नहीं जलती है तो तरूणाई राष्ट्र के लिए संकट बनकर खड़ी हो जाती है। इस यौवन के वरदान के प्रसंग में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का यह वचन सदा प्रेरणा देता रहेगा जवानी जोश है, बल है, साहस है, दया है, आत्मविश्वास है, गौरव है वह सब कुछ हैं जो जीवन को पवित्र, उज्वल और पवित्र बना देता है। आज राष्ट्र का गौरव बढ़े, इसके लिए हमें युवकों को चरित्रवान बनाना होगा। युवकों के चरित्र को गौरवमय बनाने के लिए उनके चरित्र में भारतीय संस्कृति का दिव्य प्रकाश होना चाहिए। आज प्रत्येक राजनैतिक दल नवयुवकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए हर प्रकार के हथकण्डे अपनाते हैं और आज का युवा मानस दिशा भ्रमित होकर उनके इशारों पर नाच रहा है।

महामंत्री श्री प्रेम कुमार जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा द्वारा चलाये जा रहे वेद प्रचार, नशा मुक्ति अभियान, प्राकृतिक खेती मिशन, घर घर यज्ञ और संस्कृति रक्षा आदि कार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि वे गुरुकुल कुरुक्षेत्र में पहली बार आए हैं मगर गुरुकुल के साफ-स्वच्छ और मनोहारी वातावरण ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। वास्तव में महामहिम राज्यपाल ने अपनी दूरदर्शी सोच से जर्जर हो चुके इस गुरुकुल को देश दुनिया का रोल मॉडल बना दिया। उन्होंने सभी आर्य वीरों से शिविर में सीखे प्रशिक्षण और बौद्धिक में दिये गए ज्ञान को अपने जीवन में आत्मसात कर समाज की भलाई करने के लिये प्रेरित किया।

इससे पूर्व शिविर संयोजक संजीव आर्य जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान श्री राधाकृष्ण आर्य जी की उपस्थिति में अतिथियों को शिविर में प्रशिक्षण ले रहे आर्यवीरों की अलग अलग टोलियों का निरीक्षण कराया। सभी अतिथियों ने व्यायाम शिक्षक नरेश आर्य द्वारा सर्वांग सुन्दर व्यायाम, सूर्य नमस्कार, भूमि नमस्कार, योगासन, अनिल आर्य द्वारा डम्बल, प्रवीण आर्य द्वारा लेजियम, रामबीर आर्य द्वारा दंड बैठक, सोहनवीर आर्य द्वारा लाठी चलाना, शुभम् आर्य द्वारा जूडो कराटे, महावीर आर्य द्वारा मार्चिंग आदि टोलियों का संक्षिप्त प्रदर्शन देखा और आर्यवीरों व प्रशिक्षकों के प्रयास को खूब सराहा, सायंकालीन सभा में आर्यवीरों को भजनोपदेशक जयपाल आर्य, जसविन्द्र आर्य व संदीप वैदिक ने ईश्वर भक्ति और देशभक्ति के गीत सुनाए और अपने बड़े बुजुर्गों, माता-पिता व गुरुजनों का हमेशा आदर सम्मान करने का संकल्प कराया और उनके उज्वल भविष्य की कामना की।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org